* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

भागवत-पत्रिका

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष ११ | गौराब्द ४७९, मास—माधव ७, वार—गर्भोदशायी
शुक्रवार, २९ पौष, सम्वत् २०२२, १४ जनवरी, १९६६ | संख्या ८

श्रीश्रीगोपाल-देवाष्टकम्

[श्रील-विश्वनाथ चक्रवर्ति ठक्कुर-विरचितम्]

मधुर-मृदुल-चित्तः प्रेममात्रैकवित्तः स्वजन-रचित-वेशः प्राप्तशोभा-विशेषः ।
विविध-मणिमयालङ्कारवान् सर्वकालं स्फुरतु हृदि स एव श्रील-गोपालदेवः ॥१॥

निरुपम-गुण-रूपः सर्वमाधुर्य-भूपः श्रित-तनुरुचि-दास्यः कोटि चन्द्र स्तुतास्यः ।
अमृतविजयि-हास्यः प्रोच्छलच्चित्रिताश्यः स्फुरतु हृदि स एव श्रील-गोपालदेवः ॥२॥

धृत-नव-परभागः सव्यहस्त-स्थितागः प्रकटित-निजकक्षः प्राप्तलावण्य-लक्षः ।
कृत-निजजन-रक्षः प्रेम-विस्तार-दक्षः स्फुरतु हृदि स एव श्रील-गोपालदेवः ॥३॥

क्रमवलदनुराग-स्वप्रियापाङ्गभाग-ध्वनित-रसविलास-ज्ञानविज्ञापि-हासः ।
स्मृत-रतिपति-यागः प्रीति-हंसी-तड़ागः स्फुरतु हृदि स एव श्रील-गोपालदेवः ॥४॥

मधुरिमभरमग्ने भात्यसव्येऽवलग्ने त्रिवलि-रलसवत्त्वात् यस्य पुष्टानतत्त्वात् ।
इतरत इह तस्या माररेखेव रस्या स्फुरतु हृदि स एव श्रील-गोपालदेवः ॥५॥

वहति वलितहर्षं वाहयंश्चानुवर्षं भजति च सगणं स्वं भाजयन् योऽर्पयन् स्वम् ।
गिरि-मुकुटमणिं श्रीदामवन्मित्रता श्रीः स्फुरतु हृदि स एव श्रील गोपालदेवः ॥६॥

अधिधरमनुरागं माधवेन्द्रस्य तन्वंस्तदमल-हृदयोत्थां प्रेमसेवां विवृन्वन् ।
प्रकटित निजशक्त्या वल्लभाचार्य-भक्त्या स्फुरतु हृदि स एव श्रील-गोपालदेवः ॥७॥

प्रतिदिनमधुनापि प्रेक्ष्यते सर्वदापि प्रणय-सुरस-चर्या यस्य वर्या सपर्या ।
गणयतु कति भोगान् कः कृती तत्प्रयोगान् स्फुरतु हृदि स एव श्रील-गोपालदेवः ॥८॥

गिरिवर वरदेवस्याष्टकेनेममेव स्मरति निशिदिने वा यो गृहे वा वने वा ।
अकुटिल-हृदयस्य प्रेम-दत्त्वेन तस्य स्फुरतु हृदि स एव श्रील-गोपालदेवः ॥९॥

अनुवाद—

जिनका अन्तःकरण मधुर और कोमल है, प्रेम ही जिनका एकमात्र धन है, जननी आदि स्वजनोंने जिनके वेषकी रचना की है और उससे जो विलक्षण शोभाको प्राप्त हो रहे हैं तथा जो सर्वदा नाना प्रकार के मणिमय अलंकार धारण करते हैं, वे श्रीगोपाल-देव मेरे हृदयमें सदा-सर्वदा स्फुरित हों ॥१॥

जिनका रूप और गुण अतुलनीय है, जो सर्व प्रकारके माधुर्योंके सम्राट् हैं, सभी लोग जिनकी अंगकान्तिकी सेवा करते हैं, जिनकी हँसी अमृतको भी धिक्कार देती है, करोंड़ों चन्द्र जिनके वदनकमल की स्तुति करते हैं, जिनका भ्रू-नृत्य सर्वदा छलकता रहता है, वे श्रीगोपालदेव मेरे हृदयमें सदा-सर्वदा स्फुरित हों ॥२॥

जिन्होंने किसी विशेष गुणोत्कर्षको धारण कर रखा था, जिनके बाँये हाथपर श्रीगोवर्द्धन गिरि सुशोभित हो रहे थे, जिन्होंने अपने पार्श्वदेशको व्यक्त कर रखा था और जो शत-सहस्रों प्रकारसे लावण्यमण्डित हो रहे थे, वे स्वजनोंके रक्षक तथा प्रेमका विस्तार करनेमें कुशल श्रीगोपालदेव मेरे हृदय में स्फुरित हों ॥३॥

उत्तरोत्तर वर्द्धनशील अनुरागसे पूर्ण व्रजाङ्गनाओं की अपाङ्ग-भङ्गीको लक्ष्य कर जिनके होठोंपर रस-विलासके विषयमें पूर्णज्ञान जनित मन्द मुसकान खेलती रहती है, और जो सर्वदा अनङ्ग-यज्ञका स्मरण किया करते हैं, वे प्रीतिरूप हंसिनीके लिये सरोवर स्वरूप श्रीगोपालदेव मेरे हृदयमें स्फुरित हों ॥४॥

जिनके माधुर्यमय दक्षिण कटिप्रदेशमें आलस्यके कारण त्रिवलि अर्थात् त्रिरेखा लक्षित होती है, और उस त्रिवलिकी विपरीत दिशामें कन्दर्परेखाकी भाँति मनोहर रेखा दिखलायी पड़ती है, वे श्रीगोपालदेव मेरे हृदयमें स्फुरित हों ॥५॥

जिन्होंने इन्द्र द्वारा की गयी मुसलाधार वर्षासे रक्षाके लिये श्रीगोवर्द्धनको धारण किया था और वर्षासे पीड़ित स्वजनोंको अन्न-जल प्रदान करके श्रीगोवर्द्धनके नीचे उनकी रक्षाकी थी, श्रीगोवर्द्धन-

धारण करनेसे श्रीदामकी भाँति ही श्रीगिरिराजके साथ भी मित्रता करनेवाले वे श्रीगोपालदेव मेरे हृदयमें स्फुरित हों ॥६॥

वही श्रीगोपालदेव अपनी निज-शक्ति द्वारा श्रीवल्लभाचार्यकी भक्ति, श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीका अतुलनीय अनुराग और उनके निर्मल हृदयसे छलकती हुई प्रेमसेवाका मुझमें प्रकाश करके मेरे हृदयमें सदा-सर्वदा स्फुरित हों ॥७॥

भक्तजन आज भी प्रतिदिन सब समय जिनकी प्रणय-रसकी आचरणमयी श्रेष्ठ आराधनाका दर्शन किया करते हैं, जिनके केलि-विलासों तथा अनुष्ठानों की गणना करनेमें कोई भी पण्डित समर्थ नहीं हो सकता, वे श्रीगोपालदेव मेरे हृदयमें स्फुरित हों ॥८॥

जो घरमें या वनमें, जहाँ कहीं भी रह कर दिन या रातमें इस अष्टक द्वारा देवश्रेष्ठ गिरधारी श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं, उन सरल-प्राणवाले भक्तोंके हृदयमें श्रीगोपालदेव प्रेम प्रदान करते हुए विराजमान हों ॥९॥

गौड़ीय भजन-प्रणाली

आजकल बहुतसे श्रद्धालु व्यक्ति श्रीश्रीगौरसुन्दर की अलौकिक एवं मनोहर लीला कथाओंका श्रवण कर उनके द्वारा आचरित और समर्थित शुद्ध गौड़ीय-भजन-प्रणालीको जानना और अपनाना चाहते हैं, परन्तु जब वे विभिन्न प्रकारके प्रचलित 'श्रीगौरानुगत भजन' पद्धतियोंको देखते हैं, तब उनमेंसे कौन-सी भजन-प्रणाली श्रीश्रीगौरसुन्दरद्वारा आचरित और अनुमोदित है—इस विषयका विवेचन करनेमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो पड़ते हैं। बद्ध जीव भोगमयी प्रवृत्तिको लेकर इस जगतमें आविर्भूत हुआ है। यही उसकी बद्धता है। बद्धजीव यदि खूब सावधान और आश्रय (हरि-गुरु वैष्णवकी कृपा) के बलसे बलवान् न हो, तो वह इस नैसर्गिकी भोग-प्रवृत्तिको छोड़कर आत्माके नित्यस्वरूप सेवा-धर्ममें कदापि प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

"लोके व्यवायामिष-मद्यसेवा नित्या हि जन्तोर्नहि तत्र चोदना।"—इस श्लोकमें श्रीमद्भागवतका यह कथन है कि स्त्री-संभोग और मद्य-मांस सेवनमें प्राणियोंकी स्वाभाविक रुचि होती है, इसके लिये किसीको प्रेरणा देनेकी आवश्यकता नहीं होती। अत्यन्त सौभाग्यवान व्यक्ति ही साधु-गुरुका चरणाश्रय करके उनकी कृपासे पद-पद पर सावधान रहने पर इन प्रवृत्तियोंसे छुटकारा पा सकता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी लघु व्यक्तिको ही गुरु मान कर उसका आश्रय ग्रहण करता है, तो उसे इन प्रवृत्तियोंसे छुटकारा प्राप्त करनेका बल कैसे प्राप्त हो सकता है?

भोग नाना-प्रकारकी मूर्त्ति धारण करके धर्मके रूपमें अपना परिचय देनेके लिये अग्रसर होता है। स्त्री-संग—एक दुराचार है; परन्तु कापालिक, अशुद्ध

तांत्रिक, बौद्ध सहजिया, आउल, बाउल, कर्त्ताभजा, नेड़ा-नेड़ी साईं, दरवेश आदि दलोंमें यह धर्मके रूपमें खूब प्रचलित है। दुर्भागा जीव धर्मका आचरण करके कल्याणके पथपर चलनेके लिये प्रस्तुत होकर भी चारों ओरसे घूम-फिर कर उसी दुःखके आगार-स्वरूप भोगके गड्ढेमें आकर गिरेगा ही। कापालिक, अशुद्ध तांत्रिक और अधिकांश तामस शाक्त जीव-हत्या और उनके मांस-भोजनको धर्मका प्रधान अङ्ग समझते हैं तथा उसे जीवनका आवश्यक कृत्य मान कर भोगके गड्ढेमें डूबकर उसके लिये उपयुक्त लोक संग्रह करते हैं। आसुरिक स्वभाववाले कुछ लोग गाँजा, अफीम, तम्बाकू आदि पान करनेको अपना धर्म मानते हैं। ये लोग यह नहीं समझते कि शास्त्र में कहीं भी ऐसे उपदेश नहीं हैं; बल्कि सर्वत्र ही इसका निषेध ही किया गया है।

श्रीमद्भागवतके उक्तश्लोकके परार्द्धमें कहते हैं—"व्यवस्थितिस्तेषु विवाह यज्ञ-सुराग्रहैराशु निवृत्तिरिष्टा।" अर्थात् विवाह द्वारा स्त्री-संग्रह, यज्ञमें पशुबलि और यज्ञमें सुरापान—इनकी शास्त्रोंमें कहीं-कहीं पर जो व्यवस्था दिखलायी पड़ती है, वह उन-उन कर्मोंमें लोगोंको प्रवृत्त करनेके लिये नहीं है, बल्कि उन-उन कर्मोंमें प्रवृत्त लोगोंकी स्वाभाविक प्रवृत्तिको संकुचित करने लिये है, अर्थात् उन्हें क्रमशः निवृत्तिके पथ पर अग्रसर होनेके लिये प्ररोचना मात्र है। निवृत्ति ही शास्त्रका उद्दिष्ट विषय है। अत्यन्त अभागे जीव श्रीमद्भागवतकी इस मीमांसाको तथा मनुसंहिताके 'प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला' —इस उपदेशका उल्लंघन कर भोग-प्रवृत्तिको ही धर्म मानते और आचरण करते हैं। बड़े खेदकी बात है कि इस नासमझीके कारण वे अगणित दुःखोंका आवाहन करते हैं तथा किसी प्रकार समझाने पर भी नहीं समझना चाहते। समझाना तो दूर रहे, उलटे उपदेश करनेवालेके प्रति भयंकररूप धारण कर लेते हैं, क्योंकि मूर्खोंको उपदेश देनेसे वे शान्त होनेके बदले और भी भड़क उठते हैं—"उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।"

इसी श्रेणीके कुछ "मैं श्रीश्रीगौरचरणाश्रित हूँ"-ऐसा झूठ-मूठका अभिमान रखनेवाले गौड़ीय सम्प्रदायमें प्रवेश करके भी शुद्ध भक्तोंके चरणाश्रयके अभावमें शुद्ध भक्तिधर्मको ग्रहण करनेमें असमर्थ होते हैं तथा नाना प्रकारकी घृणित भोग-प्रणालियों को अपनाकर धार्मिक कहलानेके लिये तथा अपने घृणित दलको बढ़ानेके लिये सब समय व्यस्त रहते हैं। ये लोग अपने उक्त दुराचारोंको भजनका गोपनीय रहस्य बतलाकर अविकशित बुद्धिवाले सीधे-सादे लोगोंको अपने गोरख-धन्धेमें फँसाकर उनको धर्मके नामपर नाना-प्रकारके बुरे कर्मोंमें लगा देते हैं। परन्तु विशुद्ध श्रीरूपानुग-भजन प्रणाली अंगीकार करनेवाले गौरभक्त पूर्वोक्त दुराचारसम्पन्न लोगों और उनके कुमार्गको असत्सङ्ग समझ कर उनसे सर्वदा दूर रहते हैं तथा महाजनों द्वारा अनुमोदित विशुद्ध भजन प्रणालीका अवलम्बन कर निष्किञ्चन साधु-महात्माओंका चरणाश्रय करते हैं। जो लोग महाजन-पथका उल्लंघन करके नयी प्रणाली की सृष्टि करते हैं अथवा उन अर्वाचीन प्रणालियोंके आविष्कारकोंका आनुगत्य स्वीकार करते हैं, वे शुद्ध गौड़ीय-भजन-प्रणालीसे सर्वथा अपरिचित हैं—ऐसा

समझना चाहिये। ऐसे लोगोंका संग करनेसे हमारे भजनकी अवनति निश्चित है।

जो लोग शुद्ध गौड़ीय - भजन-प्रणालीको असम्पूर्ण मानकर अथवा प्रतिष्ठा प्राप्तिके लोभसे उसमें कुछ नयी रीतियोंको अधिक रूपमें जोड़ना चाहते हैं, वे लोग भी गुरु तथा शुद्ध-आम्नाय-परम्परा—दोनोंका उल्लङ्घन करने वाले हैं। अतएव वे शुद्ध गौड़ीय-भजन-प्रणालीकी अवज्ञा करनेवाले हैं। ऐसे लोग निर्मल व्रजरस क्या चीज है—इसे न जानकर जड़ - रसको ही व्रजरस समझकर उसके आस्वादनमें प्रमत्त होकर पतित होते हैं तथा अपने अनुयायियोंको भी पतनके गढ़ेमें खींचकर डुबो देते हैं। कुछ लोग वस्त्र और अलंकारोंसे अपने पुरुषवेश को छिपाकर स्त्रीवेश धारण करनेको भजन मानकर इस पथको ग्रहण करते हैं, वे भी उक्त गुरुकी अवज्ञा करनेवाले अपराधियोंकी ही श्रेणीके अन्तर्भुक्त हैं। मूर्ख व्यक्ति ऐसे-ऐसे अपराधमय कुकर्मोंको ही भजन प्रणाली मानकर अपराध कुण्डमें डूब जाते हैं तथा दूसरोंको भी डूबानेके लिये सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं। हाय ! हाय !! इससे बढ़कर दुःखकी और क्या बात हो सकती है ? जो लोग गोस्वामी आदि विशेष वंशोंमें ही महाजनत्वको सीमित मानते हैं, श्रीमन्महाप्रभुके मुखनिःसृत 'जेई कृष्णतत्त्व-वेत्ता सेई गुरु हय।' इस उपदेश वाणीका उल्लंघन कर अतात्त्विक गुरु-वंशकी स्थापना करते चले आ रहे हैं, उनके अपराधोंकी सीमा नहीं है। ऐसे अपराधी-गण विशुद्ध श्रीगौड़ीय भजन प्रणालीको दूषित और रुद्ध करना चाहते हैं।

जो लोग विशुद्ध - गौड़ीय - भजन-प्रणालीको ग्रहण करना चाहते हैं, उनको श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु आदि प्रामाणिक ग्रन्थोंका अनुशीलन करना चाहिये। उनको ऐसी गुरु-प्रणाली को स्वीकार करना उचित है, जो श्रीरूप, श्रीजीव, श्रीरघुनाथ, श्रीकविराज, श्रीश्यामानन्द, श्रीनरोत्तम, श्रीआचार्यप्रभु और श्रीविश्वनाथ आदि गौड़ीय आचार्यशिरोमणियोंके आदर्श अनुसरणको अक्षुण्ण रखती आ रही हो। ऐसी शुद्ध गुरु-प्रणालीको अंगीकार करनेवाले सद्गुरुके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण कर निरन्तर श्रीनाम भजनमें लग जाना चाहिये। श्रीरूप गोस्वामी द्वारा प्रदर्शित भक्तिके अंगोंका आचरण करना चाहिये। विशेष रूपमें यह भी जान लेना चाहिये कि ६४ प्रकारके अंगोंमें श्रीरूप गोस्वामीने श्रीनामसंकीर्तनको सर्वश्रेष्ठ बतलाया है तथा उन्होंने यह व्यवस्था दी है कि यदि दूसरे-दूसरे अङ्गोंका अनुष्ठान करना हो तो श्रीनाम संकीर्तनके माध्यमसे ही उनका अनुष्ठान करना चाहिये। इस व्यवस्थाको छोड़कर किसी अन्य नयी व्यवस्थाका आदर कदापि नहीं करना चाहिये। भजन राज्यमें क्रमशः प्रवेश करनेके लिये सबसे पहले साधकको अर्चन और उसके साथ श्रीनामका श्रवण-कीर्तन करना चाहिये। इससे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर अनर्थनिवृत्ति या जीवन्मुक्ति होने पर क्रमशः रूप, गुण और लीला आदिकी स्फूर्त्ति अपने आप होगी।

अनर्थयुक्त अवस्थामें कृत्रिमरूपसे उनका श्रवण और कीर्तन करनेसे हमारे अनर्थ बढ़ जायेंगे तथा विषय-भोगकी पिपासा घटनेके बदले और भी बढ़ जायगी। जिस श्रवण और कीर्तनसे हृदय-रोग—

काम दूर करनेकी व्यवस्था शास्त्रोंमें दी गयी है, वह उस साधक भक्तके लिये है, जिनके अनर्थ दूर हो गये हैं तथा जिनकी श्रद्धा निष्ठा और रुचिकी अवस्थाको पार कर आसक्तिका आकार धारण कर चुकी है । ऐसी अवस्था आनेके पहले रासादि लीलाओंके श्रवण कीर्तनसे सुफलके बदले कुफल ही होता है । यहाँ 'श्रद्धा' कहनेसे प्रारम्भिक श्रद्धा समझनेका भूल नहीं करना चाहिये । जिन लोगोंको श्रद्धाके इस अर्थमें संदेह है, उन्हें श्रीमद्भागवतके देवहुति-कपिल-संवाद (तृतीय स्कन्ध, २५ अध्याय) में "सतां प्रसङ्गात्" श्लोककी टीकाओंकी विशेषरूप से आलोचना करनी चाहिये । ऐसा करनेसे वे श्रीजीव गोस्वामीके चरणोंमें अपराध करनेसे बच जायेंगे । इस विषयमें श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध, पंचम अध्यायके "श्रवणं कीर्तनं" श्लोकका क्रम-सन्दर्भ द्रष्टव्य है ।

आजकल बहुतसे गुरुनामधारी व्यक्ति 'गुरु-कृष्ण अभेद" इसका मनमाना अर्थ लगा कर स्वयं कृष्ण बनकर नाना प्रकारके घोर व्यभिचारोंमें संलग्न होकर स्वयं नरक कुण्डमें डूब रहे हैं तथा हजारों-लाखों मूर्ख लोगोंको अपने दलमें भर्ति कर देशका सर्वनाश कर रहे हैं । वे लोग श्रीचैतन्यचरितामृतके 'यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास'—इस अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्वकी अवज्ञा करके श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणोंमें भयंकर अपराध कर रहे हैं । वे श्रीरघुनाथदास गोस्वामीपादके 'गुरुवरं मुकुन्दप्रेष्ठत्वे स्मर परमजस्रं ननु मनः'—इस उपदेशका उल्लंघन कर केवल गौड़ीयोंके ही नहीं, मनुष्य मात्रके महाशत्रु हो रहे हैं ।

सहजिया आदि कतिपय अपसम्प्रदाय अनर्थयुक्त अवस्थामें ही मधुररसके भजनका अभ्यास करते हैं । वे लोग पारकीय रसास्वादनको ही भजनका अंग मानकर अपने कुमतकी पुष्टिके लिये कुछ अनुकूल वाक्यों, छन्दों तथा श्लोकोंकी स्वयं ही रचना करके उन्हें झूठमूठ महाजनों द्वारा रचित बतलाते हैं । इस प्रकार अपना व्यवसाय चलानेके लिये झूठ-मूठ अपने को श्रीरामानन्द, श्रीस्वरूप, श्रीरूप, श्रीसनातन और श्रीरघुनाथ—इन पाँच रसिक महाजनोंके अनुगत प्रचार करते हैं । परन्तु अपने इस कपट व्यवहारके लिये गोस्वामियों और श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंमें अपराध संचय कर व्यभिचारके पङ्किल श्रोतमें डूब जानेको ही बड़े आनन्दका विषय मानते हैं ।

कुछ दायित्वहीन तथाकथित शिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति अपनेको आचार्य-संतान या गोस्वामी संतानके रूपमें परिचित होकर शिष्यद्वारा कनक-कामिनी और प्रतिष्ठा संग्रहको ही जीवनका एकमात्र सार समझ कर भक्त भावसे 'गौर-गौर' या 'जय गौर, जय निताई' बोल कर शिष्यके हृदयमें अपने प्रति श्रद्धा बढ़ानेकी चेष्टा करते हैं । यह प्रथा श्रीमन्महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैतप्रभु और श्रीगोस्वामी वर्ग द्वारा अनुमोदित नहीं है । ये लोग बिना जितेन्द्रिय हुए ही अपनेको गोस्वामी कहला कर जगतमें असंयमका आदर्श ही प्रतिष्ठित करना चाहते हैं । ये तथा इनके अनुगामी शिष्यगण कभी भी गौड़ीय भजन-प्रणालीको प्राप्त नहीं हो सकते ।

और भी एक श्रेणीके लोग हैं, जो आलस्य-परतंत्रता और मूर्खताको ही गौड़ीय भजन माननेका भ्रम कर बैठते हैं । साधक अवस्थामें निर्जनमें बैठ

कर माला खींचते हुए कृत्रिमभावसे लीला-स्मरण करनेकी चेष्टा द्वारा कष्ट कल्पनापूर्वक दीनताका अभिनय करनेसे भजन सिद्ध नहीं होता। निर्जन भजन, लीला-स्मरण, दैन्यभाव—यह सब सिद्धोंके लिये ही सम्भवपर है। असिद्धोंके लिये इनका कृत्रिम आवाहन और बनावटी पुलक-कम्पाश्रु आदि दिखलाना अत्यन्त अहितकर होता है। सच्चे साधक इन कपट व्यवहारोंसे दूर रह कर अपने-अपने अधिकार के अनुसार श्रीरूप गोस्वामीद्वारा प्रदर्शित भक्तिके अङ्गोंका अनुष्ठान करेंगे। ऐसा नहीं करनेसे उनका मायिक अभिनिवेश कदापि दूर नहीं होगा। सम्बन्ध ज्ञानकी पुष्टिके लिये श्रीगुरुदेवके चरणोंमें भक्तिशास्त्र का अध्ययन, श्रवण और विवेचन करना होगा।

"सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस।
इहा हैते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥' चै. च.

श्रीनरोत्तम ठाकुरने भी सिद्धान्तको अनावश्यक और त्याज्य नहीं बतलाया है। इसीलिये उन्होंने श्रीजीव गोस्वामीका आश्रय ग्रहण करनेका उपदेश दिया है। ऐसा नहीं करनेसे व्यर्थ ही हम तर्ककी आगमें जलते रहेंगे। सिद्ध महापुरुषोंके आचरणोंको स्वयं साधकावस्थामें आचरण करनेके लिये चेष्टा नहीं करनी चाहिए। ऐसा करनेसे मायादेवी आलस्य और प्रमाद आदिके रूपमें आक्रमण करती है। सेवा-कार्यमें अलसताका अर्थ है—भजनका अभाव और कृत्रिम रूपमें अश्रु-कंप आदिका प्रकाश करनेमें हृदय कठिन हो जाता है। 'तदश्मसारं हृदयं बतेदं' श्लोककी टीकामें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजीने हम लोगोंको इस विषयमें विशेष सावधान रहनेका उपदेश दिया है। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें श्रीलरूपगोस्वामीचरणने स्पष्ट रूपसे उपदेश दिया है कि भावका अंकुर प्रकटित होनेपर ही नौ प्रकारके भावांकुर दृष्टिगोचर होते हैं। भावांकुर पैदा होनेपर कृष्णेतर सभी विषयोंके प्रति अवश्य ही वैराग्य पैदा होगा। जहाँपर भोगोंका ताण्डव नृत्य हो रहा है, वहाँ कृष्णसेवाके अतिरिक्त दूसरे कार्योंमें कुछ न कुछ समय अवश्य ही व्यय होता है तथा भाव अंकुरित नहीं हुआ है—ऐसा समझना चाहिए। यदि ऐसे स्थानमें बाहरसे भावांकुर देखे जाँय तो, उन्हें आत्मवंचना ही समझना चाहिए। जहाँ दूसरोंको ठगनेका उद्देश्य है, वह कपटता भक्ति-विरोधी तो है ही, अधिकन्तु अभद्रोचित भी है। वैसी आत्मवंचनामें भजनका गंध भी नहीं होता। सरल साधक इस विषयमें सतर्क रह कर वैसे भावाभाससे अपनी रक्षा करेंगे।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

स्मार्त्तोंका अशौच

[कुचबिहार जिलेके अन्तर्गत माथाभाङ्गा सबडिविजनमें गोलेनोहाटी नामक ग्राममें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके एक शिष्य रहते हैं। उनका नाम श्रीनृत्यगौर दासाधिकारी है। उनके कुटुम्बमें एक व्यक्ति के मरने पर उन्होंने स्मार्त मतानुसार अशौच पालन करना अस्वीकार किया इसपर स्थानीय ग्रामवासी उन पर नाना प्रकारके अत्याचार करनेकी धमकी देने पर उन्होंने परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवके चरणोंमें इस विषयमें एक पत्र दिया। उस पत्रके उत्तरमें श्रीश्रीआचार्यदेवने उनको जो पत्र दिया है, उसे सर्व साधारणके लिये श्रीपत्रिकामें प्रकाशित किया जा रहा है।]

—सम्पादक

स्नेहास्पदेषु !

नृत्य गौर ! कुछ दिनों पूर्व तुम्हारा पत्र मिला है। आज और एक रजिस्ट्री पत्र प्राप्त हुआ। तुम्हारे दोनों पत्रोंमें एक ही समस्याका उल्लेख है। उसके उत्तरमें मैं जो कुछ लिख रहा हूँ, उसे वहाँकी शिक्षित मण्डलीको दिखलाना तथा आम जनताको भी इसे सम्पूर्णरूपसे अवगत कराना। पतित किसे कहते हैं और अशौच किसे कहते हैं, सर्व प्रथम इस पर विचार करना आवश्यक है। 'पतित'का विपरीत शब्द है—'उन्नत'। कौन मनुष्य पतित है तथा कौन उन्नत है—इस पर विचार होना चाहिए। 'उन्नत' शब्दका अर्थ क्या है ? जो लोग शास्त्र नहीं मानते, अखाद्य-कुखाद्य भोजन करते हैं अर्थात् मांस-मछली, प्याज, लहसुन, चाय, पान-बीड़ी और तम्बाकू आदि खाते हैं, वे ही वास्तवमें "पतित जीव" या "पतित मनुष्य" हैं। प्रायः निम्न श्रेणीके लोग ही उक्त राजसिक और तामसिक पदार्थोंका भोजन करते हैं। इसके विपरीत सात्त्विक आहार करनेवाले अधिकांश श्रेष्ठ व्यक्ति होते हैं। मैं अपने प्रवचनमें अक्सर एक गल्प उदाहरणके तौर पर कहा करता हूँ। वह गल्प इस प्रकार है—

किसी गाँवके स्त्री-पुरुष, बालक, युवक, वृद्ध—सभी लोग गाँजाका सेवन करते थे। ग्रामके माता-पिता या बड़ी आयुवाले लोग छोटे-छोटे बच्चोंको भी गाँजा-सेवनका अभ्यास करा देते थे। एक समय उस गाँवके एक गृहस्थके घर माता-पिता और बड़े भाई आदिके बार-बार अनुरोध, डाँट-डपट तथा मिठाई देने आदिके लोभ दिखलाने पर भी एक छोटा बालक गाँजाका सेवन करनेके लिये किसी प्रकार प्रस्तुत नहीं हो रहा था। बालकको गाँजाका तीव्र कड़ुआ धुवाँ असह्य लगता था। गाँजाके नाम से ही उसे उलटी हो आती, सिर घूमने लगता। ऐसा देखकर उसके माता-पिता, बड़े भाई और पास-पड़ोसी बड़े चिन्तित हुए कि इस बच्चेको अवश्य ही कोई रोग हो गया है, अथवा इसे भूत-प्रेत लग गया है; इसीलिये यह गाँजा नहीं पी रहा

है। ऐसा सोच कर उन लोगोंने ओझा बुलवा कर झाड़-फूँक करवाना आरम्भ करवा दिया। उनमेंसे कुछ अधिक बुद्धिमान व्यक्तियोंने डाक्टर बुलाकर परामर्श करने लगे कि उस बच्चेको किस प्रकार गाँजाका सेवन कराया जाय।

तुम्हारा पत्र पाकर गाँजेवाली उक्त कथा मुझे स्मरण हो आयी। क्या तुम्हारे गाँवमें सात्त्विक उन्नत व्यक्ति नहीं हैं? क्या वहाँके सभी पतित व्यक्ति हैं? क्या वहाँके सभी लोग राजसिक और तामसिक क्रिया-कलापमें ही व्यस्त रहते हैं? इसे मैं सरलतासे विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। निश्चय ही तुम्हारे गाँवमें कुछ शिक्षित, बुद्धिमान और विचारक व्यक्ति भी हैं। तुम उन लोगोंका सहयोग प्राप्त करना।

सत्त्वगुणकी सदैव विजय होती है। तमोगुण और रजोगुण अन्त तक अवश्य ही पराजित होते हैं। उपनिषद, पुराण और रामायण-महाभारत आदि शास्त्रोंके अध्ययनसे यह पता चलता है कि वे असुर लोग आरम्भमें विजय प्राप्त करने पर भी अंतमें विष्णुके सुदर्शन चक्र द्वारा असुरोंका ध्वंश होनेपर वे पराजित हुए तथा देवताओंकी ही विजय हुई। दैवभाव ही उन्नत भाव है तथा आसुरिक भाव हेय और पतित है। इसलिये उन्नत और अवनतका विचार होना अत्यन्त आवश्यक है।

भगवद्भक्त प्रह्लादके विरुद्ध भारत-सम्राट हिरण्यकशिपुने भीषण अत्याचार किये। परन्तु भगवान नृसिंहदेवने अवतार ग्रहण करके भयंकर शक्तिशाली हिरण्यकशिपुको क्षणमात्रमें मार गिराया यह हिन्दू समाजमें अभ्रान्त सत्य-घटना है। इसलिए भगवद्भक्तोंके ऊपर जो लोग अत्याचार करेंगे, वे अवश्य ही पतित जीव हैं और श्रीनृसिंहदेव उनका वक्षःस्थल विदीर्ण करके अवश्य ही उनका विनाश साधन करेंगे। यही विश्वास और बल सर्वदा हृदय में रखना। भगवान हैं और अवश्य हैं। वे भक्त-विरोधीजनोंका विनाश करके अपने भक्तोंकी सर्वदा रक्षा करते हैं। इसीलिये वे भक्तवत्सल हैं।

भक्त सर्वदा 'शुचि' अर्थात् पवित्र होते हैं। वे कभी भी अपवित्र या अशुचि नहीं होते। इसलिये भक्तोंको अर्थात् नामाश्रित वैष्णवों या शुद्धाचारी वैष्णवोंको कभी भी अशौच नहीं होता। अतः उन्हें अशौचका पालन नहीं करना पड़ता। जो लोग विष्णु मंत्र अथवा महामंत्रमें दीक्षित नहीं होते, वे लोग जन्मसे आरम्भ कर मृत्यु तक सदैव अशौच हैं। इसलिये देव मन्दिरोंमें उन्हें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

सारे भारतवर्षमें 'हरिभक्तिविलास' और 'सत्क्रियासारदीपिका'—ये दो प्राचीन स्मृति ग्रन्थ प्रचलित हैं। सर्वत्र ही, विशेष कर बंगाल, बिहार उड़ीसा और उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तोंमें उक्त स्मृतियों के विधानके अनुसार ही लगभग ५०० वर्ष पूर्वसे ही पूजा और पर्व अनुष्ठित होते आ रहे हैं। रघुनन्दन भट्टाचार्यका 'अष्टाविंशति तत्त्व' नामक स्मृति ग्रन्थ लगभग दो-तीन सौ वर्ष पूर्वका एक आधुनिक स्मृति ग्रन्थ केवल बंगालके इने-गिने स्थानोंमें ही वह भी केवल उपरोक्त प्रकारके आसुरी-प्रकृतिके व्यक्तियों में ही प्रचलित है। सात्त्विक स्वभाववाले—दैवी प्रकृति सम्पन्न मनुष्य इसका आदर नहीं करते।

यदि तुम अपने गाँवके कुछ शिक्षित स्मार्त्त पण्डितों को ला सको, तो मैं उन्हें शास्त्रीय प्रमाण और सुयुक्तिके बल पर उन्हें इस विषयको भली भाँति समझा सकता हूँ। हमारा ऐसा विश्वास है कि शास्त्रज्ञ और सुशिक्षित होने पर वे वैष्णवोंकी प्राचीन स्मृतिकी मर्यादा माननेके लिये निश्चित रूपमें बाध्य होंगे।

रघुनन्दन भट्टाचार्य द्वारा रचित 'अष्टाविंशति' की विचारधारा अधिकाँश क्षेत्रोंमें अशास्त्रीय और युक्ति-विरुद्ध है। उनके 'शुद्धितत्त्व' में प्रदर्शित विचारके अनुसार कोई भी व्यक्ति जीवित कालमें कभी भी पवित्र या शुद्ध नहीं हो सकता। जीवन भर उसे अशौच और पतित होकर रहना ही पड़ेगा। और तो क्या, ब्रह्म-जन्मा ब्राह्मणोंकी भी शुद्धता सिद्ध नहीं होती। इसका कारण इस प्रकार है—मान लिया किसी ब्राह्मणके घर एक बच्चा पैदा हुआ। उसके जन्मते ही मातृकुल और पितृकुलके सात पुरुषोंके सभी लोगोंमें अशौच-स्पर्श किया। यह अशौच काल १० दिनका माना जाता है। अब १० दिनका अशौच काल बीतते न बीतते ही अर्थात् १० दिनके अन्तर्गत ही सात पुरुषोंके हजारों-लाखों स्त्री-पुरुषोंमेंसे किसीकी मृत्यु या किसीके घर बच्चा पैदा होनेसे पुनः अशौच आरम्भ हो गया। इस प्रकार सात पुरुषोंके बीच किसी न किसीकी मृत्यु या जन्म होनेके कारण जीवन भर अशौच लगा रह जायगा। यदि अशौच काल बीतने पर आपके-आप शुचि या शुद्धिता हो जाती है तो फिर मंत्रपाठकी आवश्यकता ही क्या है? वह कौनसा मंत्र है जिससे शुद्धि होती है? इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि जन्म या मृत्युके दिन ही उसी समय उसी मंत्रका पाठ किया जाय तो क्या उससे अशौच दूर नहीं होगा? प्रत्येक ब्राह्मण त्रिसंध्या गायत्री जप करते हैं। क्या ब्रह्म-गायत्रीमें अशौच नष्ट करनेकी शक्ति-सामर्थ्य नहीं है? अवश्य है। अतः रघुनन्दन भट्टाचार्यका अशौच-विचार—जो सर्वथा युक्तिविरुद्ध तथा शास्त्रविरुद्ध है—बुद्धिमान और शिक्षित समाज के लिये आदरणीय नहीं है।

मैंने ऊपरमें केवल ब्राह्मणोंका उदाहरण देकर बतलाया है; परन्तु यह सर्वत्र ही सभी जातियोंपर प्रयोज्य है। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा चतुर्वर्ण बहिर्भूत अन्त्यज जातिके लोगोंके सम्बन्धमें भी यही विधि लागू होगी।

प्राचीन कालमें गुण और कर्मके अनुसार किसी व्यक्तिकी जाति या वर्ण निर्द्धारित होता था। माता पिताकी जाति ही पुत्रकी जाति हो-ऐसा निश्चित नहीं था। आज भी भारतवर्षके बहुतसे क्षेत्रोंमें ऐसी विधि और प्रथा प्रचलित है। गीतामें भी श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—'चातुर्वर्ण्यम् मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः'। गीताको कौन अस्वीकार कर सकता है? वर्तमान कलियुगमें आसुरिक भाव प्रबल होनेसे वंशानुक्रमसे जाति या वर्ण निरूपित होने लगा है। इस प्रकार वंशानुक्रमिक जाति मान लेने पर स्त्री-पुरुषकी मैथुन-क्रिया ही जाति निरूपणका कारण हो पड़ता है। शास्त्रोंमें देवता और असुरोंका पार्थक्य बतलाते हुए ऐसा कहा गया है—'विष्णुभक्तो भवेद्दैव आसुरस्तद्विपर्ययः।' अर्थात् विष्णुभक्ति

परायण व्यक्ति ही देवता हैं और इसके विपरीत दूसरे सभी असुर भावापन्न हैं। इसलिये विष्णुके उपासक देव-भावापन्न वैष्णवगण उन्नत हैं तथा असुर भावापन्न व्यक्ति पतित हैं। इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है।

कलियुगमें आसुरी प्रकृतिके व्यक्ति अपने शरीर-बल, अर्थ-बल और लोकबलके कारण बलपूर्वक मनमाना करने-करानेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु अन्त तक वे टिक नहीं पाते। अशौच होने पर नारायणकी पूजा बन्द कर देनी चाहिये—यह तुम्हारी ग्राम्य-विधि है। यदि इस विधिके मानते हैं, तो नारायण १० दिन, १२ दिन, १५ दिन और किसी किसीके विचारसे एक महिने तक भूखा रहनेके लिये बाध्य होंगे। यह पाखण्डतापूर्ण विचार है। इन लोगोंकी अशौच विधियोंमें इतना जोर है कि पतित पावन स्वयं भगवान भी पतित हो पड़ते हैं। यह ठीक है कि तुम्हारी ओर के पतितवादियोंका पातित्य या अशौच उनके जीवन भर तक कभी भी नष्ट नहीं होगा। परन्तु तुम भगवानके नाम-मन्त्रसे अर्थात् विष्णु-मन्त्र और नाममें दीक्षित हो; अतः तुमको कभी भी कोई अशौच स्पर्श नहीं कर सकता। इसलिये तुमको अशौच पालन नहीं करना पड़ेगा। जो लोग भूलसे तुमको पतित मान बैठे हैं, वे ही वास्तवमें पतित हैं। अतः तुम उनका संग कभी भी न करना। पतितोंका संग करनेसे पतित होना पड़ता है—सर्वदा यह स्मरण रखना। वैष्णवजन पतितोंके उद्धारक हैं। पतित जीव वैष्णवोंका संग प्राप्त करके उद्धार लाभ करते हैं। तुम पाखण्डियोंके किसी भी विचारका अनुमोदन न करना। समाज कदापि भगवान नहीं है। भगवान और भगवद्भक्तोंके अधीन ही समाज है।

साधारणरूपसे बंगालके किसी क्षेत्रमें किसी व्यक्तिके मरने पर उसका पुत्र जाति और वर्णके अनुसार अशौचका पालन कर पितृश्राद्ध करता है। परन्तु तुम्हारे पत्रसे मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम्हारे गाँवमें वैष्णव-स्मृतिके अनुसार श्राद्ध नहीं किये जाते, बल्कि रघुनन्दनकी अशुद्ध विधिके अनुसार ही श्राद्धादि किये जाते हैं। इसे वास्तवमें श्राद्ध नहीं कहा जा सकता है। इस विषयमें मैंने पहले भी दो-एक बातें बतलायी थीं। उन्हींको स्मरण करानेके लिए पुनः नीचे लिख रहा हूँ—

'श्राद्ध'—शब्द श्रद्धासे उत्पन्न हुआ है। 'श्रद्धा' के उत्तरमें 'ष्ण' प्रत्यय लगानेसे श्राद्ध-शब्द निष्पन्न हुआ है। श्रद्धा-सम्बन्धी क्रिया-कलाप ही श्राद्ध है; परन्तु स्मार्त समाजके लोग मृत माता-पिताकी तृप्तिके लिये जो तर्पण अथवा श्राद्धादि करते हैं, उनमें मृत पिता-माता प्रेत-प्रेतनी हो गये हैं—ऐसा अनुमान कर उसी प्रकार मन्त्र उच्चारण करते हैं। यथा—

"एते प्रेत तर्पणकाले भवन्तीह"

अब पाठकगण स्वयं यह विचार करें कि स्मार्त विचार कितना भ्रमपूर्ण है। स्मार्तोंके अनुसार पिता ने अपने जीवितकालमें जितना भी पुण्यकार्य क्यों न किया हो, जितनी भी भगवानकी भक्ति क्यों न की हो, मृत्युके पश्चात् वह अवश्य ही भूत-प्रेत होगा। इसलिए पुत्र श्राद्धके समय पिता या माताको प्रेत और प्रेतिनी कहकर सम्बोधन करेगा कि "हे पिता! और हे माता! तुम प्रेत और प्रेतनी हो गए हो।

मैं तुम लोगोंको प्रेतोंके लिये उपयुक्त आहार जले हुए मांस और मछली आदि पदार्थ निवेदन कर रहा हूँ। आप लोग इसे खा-पीकर सन्तुष्ट हों।" श्राद्धके समय पुरोहित लोग ऐसा ही मन्त्रपाठ करते हैं। कहीं-कहीं कुछ स्मार्त पण्डित भी वैष्णवोंके सुसिद्धान्तपूर्ण विचारको सुनकर और तिरस्कृत होकर विशेष-विशेष शिक्षित लोगोंके घरोंमें भुनी हुई मांस मछलियोंके बदले जला हुआ केला अथवा चावल निवेदन करते हैं। यह पुत्रके लिये पिताके प्रति श्राद्धकी क्रिया नहीं है यह तो संपूर्णरूपसे अश्राद्ध क्रिया है। समाजमें ऐसी श्राद्ध क्रियाका बन्द होना अत्यन्त आवश्यक है। वैष्णव विधानके अनुसार श्राद्ध नामापराधके अन्तर्गत होनेके कारण अकरणीय होने पर भी लोकाचार वशतः भगवानके निर्गुण महाप्रसादके द्वारा जिस कार्यका अनुष्ठान किया जाता है वही वास्तविक श्राद्ध है। जीव मनुष्य, देवता, दानव अथवा किसी भी निकृष्ट योनिको क्यों न प्राप्त हो, महाप्रसादके द्वारा उसको अवश्य ही मुक्ति मिलेगी। स्मार्त श्राद्धमें कहीं भी इस प्रकार का फल वर्णित नहीं हुआ है। स्मार्त श्राद्धसे कोई भी सुफल उत्पन्न नहीं होता। ऐसा जानकर ऐसे श्राद्धका परित्यागकर लोग गयामें विष्णुके चरणकमलोंमें श्राद्ध आदि करते हैं। यह भी स्मार्त श्राद्धके विरुद्ध विचार है क्योंकि स्मार्त श्राद्ध द्वारा उद्धार प्राप्त होने पर भी गया जाकर विष्णुपादपद्मों में पुनः श्राद्ध करनेकी आवश्यकता ही क्या है। तुम किसी भी स्मार्त श्राद्धकी क्रियाकलापमें सम्मिलित न होना और न उनका निमन्त्रण ग्रहण करके उसमें भोजन आदि ही करना।

जो लोग मांस-मछली, प्याज, लहसुन, बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू और मद्य आदि अमेध्य वस्तुओंका सेवन करते हैं, वे ही पतित हैं। हिन्दु समाजमें जिन देव देवियोंकी पूजा होती है उनमेंसे किसीको भी जला हुआ मत्स्य, मांस अथवा कच्चा मांस निवेदन नहीं किया जाता। जो लोग उक्त अशुद्ध आहार ग्रहण करते हैं वे ही पतित हैं। चूँकि उनका जो प्रिय आहार है उसे किसी भी देवताको निवेदन नहीं कर सकते। जो मत्स्य-मांस, प्याज-लहसुन, तम्बाकू-बीड़ी-आदि स्वयं ग्रहण नहीं करते साथ ही इन पदार्थोंको खानेवाले लोगोंके द्वारा पकाए खाद्य-पदार्थोंका स्पर्श भी नहीं करते वे ही वास्तवमें उन्नत जीव हैं। वे कदापि पतित नहीं हैं। जो लोग इनको पतित कहते हैं अथवा तुम्हारे ऊपर दैत्य-दानवोंके समान अत्याचार करने पर तुले हुए हैं वे अवश्य ही अधः पतित हैं। तुम कभी भी उनकी हाँ में हाँ मिलाकर पतित नहीं होना। कलकत्तेमें यह प्रसिद्ध है कि वहाँके पाटमार या चोर चोरी करके दूसरे लोगोंको दिखलाकर चिल्लाते हैं कि यह चोर है, यह चोर है।

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम्हारे प्रति भगवानकी बड़ी कृपा हो रही है। साधक जीव अत्यन्त दुख मिलने पर भी दुःसङ्ग या असत्सङ्गका परित्याग नहीं कर पाते किन्तु तुम पर भगवानकी ऐसी कृपा है कि असत्सङ्ग आदि स्वयं तुमको परित्याग कर रहे हैं। साधकके लिए इससे बढ़कर और क्या कल्याणकी बात हो सकती है अर्थात् तुम्हें उन लोगोंके घर पर भोजन नहीं करना पड़ेगा, उन लोगोंके घरपर जाकर तुम्हें हुक्का-

तम्बाकू-बीड़ी इत्यादि पीना-पिलाना नहीं पड़ेगा। वे भी तुम्हारे घर पर न आवेंगे। इसकी अपेक्षा तुम्हारे मंगलका विषय और क्या हो सकता है? इसके लिये तुम भगवानको धन्यवाद देना।

"असत् सङ्ग त्यागना ही वैष्णव आचार है"—यह श्रीचैतन्य चरितामृतमें देखा जा सकता है। वैष्णव आचारोंमें प्रधान आचार है—असत् संग त्याग। भगवानकी इच्छासे तुम्हारे लिये ऐसा अपने आप हो रहा है। जो कुछ भी हो, तुम अत्यन्त कठोर नियम निष्ठा के साथ चलना। किसी भी प्रकारका उल्लंघन मत करना। सज्जन व्यक्ति तुम्हारा आदर्श ग्रहण करनेके लिए बाध्य होंगे। मैं यहाँ अनेक सेवा कार्योंमें व्यस्त हूँ। इस समय मेरा कहीं जाना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त जानेके लिये अत्यन्त खर्च अपेक्षित है। यदि अति आवश्यक होगा तो मैं पण्डित समाज के साथ विचार करनेके लिए प्रस्तुत हूँ। हमारे साथ विचारोंमें परास्त होने पर वे अपने स्मार्त विचारका परित्याग करके वैष्णव विचार ग्रहण करनेके लिये बाध्य होंगे, श्रीचैतन्य महाप्रभुका विचार सर्वोपरि है। समग्र पृथ्वी ने उनके प्रचारित प्रेम धर्मके विचारको सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है। अक्षम व्यक्ति वैष्णवधर्मका आचार ग्रहण न करनेपर भी वैष्णवधर्म ही सर्वश्रेष्ठ है, यह सर्व-सम्मत एवं शास्त्र सम्मत है; श्रीमद्भागवत, गीता आदि वैदिक ग्रन्थ ही इसके प्रमाण हैं।

अधिक क्या! इस पत्रकी प्रतिक्रिया कैसी होती है, अवगत कराना। बीच-बीचमें माथामांगा मठमें आना। मेरे इस पत्रको अपने पास सुरक्षित रखना और बीच-बीचमें इसे पढ़ना।

—नित्यमङ्गलाकांक्षी—श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

अनुवादक—ओ३मप्रकाश दासाधिकारी साहित्यरत्न,बी.ए.(फा)

"श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव"

आजका मानव विभिन्न परिस्थितियों और विकट समस्याओंकी चक्कीमें पिस रहा है। उसका जीवन भय, आघात, दुःख, शोक, चिन्ता और रागद्वेषके चक्रमें फँसा है। आधुनिक वातावरणकी उलझनें उसे निजगृह स्थित अमूल्य आध्यात्मिक रत्नराशिकी ओर दृष्टिपात करनेका समय नहीं देती, या परम-तत्त्वको ढूंढ़नेके लिये जाने ही नहीं देती। वह दिनों दिन आत्मशून्य विगतप्रभ होता जा रहा है। उसके ऊपर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ रहा है या वह ऐसे संस्कारोंसे संस्कारित हो रहा है कि सत्य-असत्यका ज्ञान उससे दूर हो गया है। वह अधिकाधिक भौतिक-वादी देशोंसे सुख, शान्ति, ज्ञान, विज्ञान, संस्कृतिके के कणोंकी भिक्षा माँग रहा है। आधुनिक विज्ञानके द्वारा उत्पन्न प्राकृतिक पदार्थोंसे कृत्रिम सुखोंकी उपल-ब्धि कर अपनेको धन्य मान रहा है। आधुनिक विकासके प्रकाशमें संज्ञाशून्य होकर दौड़ लगा रहा

है, जहाँ अन्तमें दुःख, शोक, निराशा और अन्धकारके अतिरिक्त कुछ नहीं है। वह अपने स्वरूप, अपनी शक्ति और अपनी परम्पराओंको भूल गया है। अपने सांसारिक उदर-पूर्त्तिके साधनोंमें नव-सम्पादित परिवारमें, मनोरञ्जनके वैज्ञानिक साधनोंमें, सामाजिक व्यवहारोंमें, आधुनिक राजनीतिमें अपने को लीन कर चुका है। उसे अहोरात्रमें एक क्षणका भी समय नहीं है। अतः सद्विचारोंकी चर्चाके लिये समय कहाँसे लाये। वह यह भी भूल गया है कि "जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुर्वं जन्म मृतस्य च"—यह एक अटल सिद्धान्त है। ऐसा प्रतीत हो रहा है, वह अपनेको अमर मान बैठा है।

वह उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयके कारण जगन्नियन्ता परम कारुणिक प्रभुको कभी ध्यानमें नहीं लाता। यदि वह किसी देवालय या श्रीविग्रहके समक्ष अगत्यागति पहुँच भी जाता है, तो या तो किसी प्रकारके दोष ढूँढ़ता है अथवा अपनी भक्तिका विज्ञापन करता है। श्रीगुरुदेवके चरणोंके समीप पहुँचता नहीं, क्योंकि वह उन्हें मानव मानने लगा है। काम, क्रोध, लोभ, और मोहकी चतुरंगिणी सेना उसका पीछा नहीं छोड़ती। इस समय उसके पास त्याग, तपस्या, नैतिकता, निस्वार्थ भाव, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य पवित्रता, परोपकार वृत्ति—केवलमात्र उच्चारण, भाषण और पठनके विषय रह गये हैं। उनका पालन अति कठिन हो गया है। प्राचीन वार्ताएँ, रूढ़िवाद या धर्म पन्थियोंकी बहक कहकर टाल दी जाती है। विकासवादके युगमें भूत-भविष्यत्को भूलकर वर्तमानको मान दे रहा है। हरक्षेत्रमें पश्चिमीय अनुकरण कर अपनेको महापुरुष मानने लगा है या सभ्य कहलाने लगा है।

दिन प्रतिदिन इस प्रकारकी मानवकी दशा देखकर महापुरुष, परमगुरु, सन्त, वैष्णव, आचार्योंका हृदय अत्यधिक व्यथित हो रहा है। द्रवित होकर फिरसे उसे अपनी ओर लौटाना चाहते हैं। सन्मार्ग पर लाना चाहते हैं, जहाँ प्रकाश और आनन्द है।

वे सोच रहे हैं—कैसा मूढ़ है यह, जिसने परकारुणिक स्वामीके प्रति उपेक्षा कर ली है। क्यों नहीं वह सुदामाके दीनबन्धु सखाको सखा मानता? क्यों नहीं अर्जुनके सारथी मित्रकी ओर ध्यान देता और क्यों नहीं आचार्योंके सर्वस्व, सन्तोंके धन, वैष्णवोंके प्राण परमाराध्य श्रीकृष्णका नाम हृदय-वाणीसे एक बार भी उच्चारण करता? वह क्यों नहीं मीराके गिरिधर गुपालका स्मरण करता और क्यों नहीं व्रजके निधि, गोपियोंके जीवन, यशोदाके लाडिले, गायों गोपोंके रक्षक कंसारिको याद करता?

कैसी विडम्बना बढ़ गई है उसमें, जो आनन्द समुद्रको छोड़ मायाकी मृग मरीचिकाके धूलि कणों में लोट रहा है। उसे आनन्द समुद्रके पास आने पर ही सच्ची सुख शान्ति मिलेगी। यदि बहुत दूर चला गया है तो चिन्ता नहीं, लौट आये और हमारे साथ जगाई-मधाईके उद्धारक, परम कारुणिक, भगवन्नाम प्रेम-प्रदाता, प्रेमके समुद्र भगवान शचीनन्दन के चरणोंमें गिरकर स्वर में स्वर मिलाकर "हरिबोल हरिबोल मुकुन्द माधव गोविन्द बोल" की गगन-भेदी गुञ्जारसे संसारको आच्छादित कर दे। सारी

समस्याएँ, सारी परिस्थितियाँ गोपालकी प्रेमभरी चितवनसे सुलझ जायेंगी। वह आनन्दका आसव पीकर मस्त हो जायगा।

अब तकके इतिहासके पन्ने उलट कर देखें या भक्ति शास्त्र अथवा ज्ञान शास्त्रमें अवगाहन कर देखें तो सभीको श्रीकृष्णके पावन चरणोंमें पहुँचनेपर ही आनन्दकी प्राप्ति हुई है। भगवान्‌की गीतामें सत्य प्रतिज्ञा है या घोषणा है—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥'

भारत आध्यात्मिकता और निर्मल भक्तिके कारण ही सारे संसारका गुरु था। यहाँ आकर सभी आश्रय लेते थे। महापुरुषों, वैष्णवों और सन्तोंके पावन चरणोंकी धूलिमें बैठकर अपना जीवन कृतार्थ करते थे। वही भारत आज अपने स्वरूपको प्रति क्षण बदल रहा है। इस वर्तमान परिस्थितिमें भक्ति ही मानवके आनन्दका साधन है।

अतः पाठकोंको अपने प्रबन्धकी ओर अग्रसर करा रहा हूँ। श्रीमद्भागवतमें "वात्सल्य भाव", "सख्य भाव", "दास्य भाव" के तीन प्रबन्धोंका अनुशीलन आपने पत्रिकामें किया ही होगा। आज जिस प्रबन्धका उद्धरण कर रहा हूँ, वह सद्वैष्णवों की निधि है। सदस्य हृदय सम्वेद्य है। आद्यन्त रस स्वरूप है। इसके पठनके पूर्व मनसा वाचा कर्मणा सभी इन्द्रियोंका संयम करना पड़ेगा। मनीरामको अपने अधीन करना होगा। मिथ्या विचार, मिथ्या कल्पनाएँ, दूषित व अश्लील विचारोंका परित्याग करना होगा। लोक पक्षकी लौकिक भावनाएँ दूर करनी होंगी। सत्य मनसे व्रज राजकिशोरी श्रीराधा जीकी सखियोंकी सखी बनना पड़ेगा तभी इसका मिठास मिलेगा। इस रसकी वीथिकामें श्रीलाड़िली जीके आदेशसे ही हम प्रवेश पा सकेंगे। गर्ग संहिताकी गोलोक खण्डकी एक कथा है। एक समय रासस्थलीमें श्रीरुद्र और आसुरी मुनि गये। उन्हें द्वारपर ही रोक दिया गया और एक सखीने कहा कि आप मानसरोवरमें स्नान करें, वहाँ से गोपीभाव प्राप्त होने पर ही हम आपको प्रवेश दे सकेंगी और आप रासका दर्शन कर सकेंगे।

वही रासराज और रासेश्वरी तथा गोपियोंकी शृङ्गार भावनाओंसे ओत-प्रोत मधुर रस या माधुर्य भावका निरूपण गुरुओंकी कृपासे व्यासवाणी श्रीमद्भागवतके आधार पर किया जा रहा है।

नायक नायिकाओंके प्रेमका आधारभूत जो शृङ्गार रस लोकमें शृङ्गार रसके नामसे उच्चरित होता है, वही भक्तिक्षेत्रमें राधा-कृष्ण एवं गोपियोंके अनन्य दिव्य प्रेमका आधार होनेसे मधुररस या माधुर्यभावके रूपमें सम्मानित किया जाता है। जड़ीय शृङ्गार रस अत्यन्त हेय और अनित्य है। सच्चिदानन्द एवं मूर्त्तिमान रस स्वरूप श्रीकृष्ण और ह्लादिनी-सार स्वरूपा श्रीमती राधिका एवं उनकी कायव्यूह स्वरूपा गोपियोंकी परस्पर प्रीति अप्राकृत एवं नित्य शृङ्गार रस है। यही यथार्थ शृङ्गार या माधुर्य रस है। इसे उज्ज्वल शृङ्गारकी संज्ञा भी देते हैं। भगवान नन्दनन्दनसे प्रीति, चाहे काम

रूपा हो या सम्बन्धरूपा–इस रतिभावजन्य आनन्द को मधुररस या माधुर्य भाव ही कहते हैं।

उक्त प्रीति चाहे स्वकीया हो, चाहे परकीया भावकी—शृङ्गार रसके अन्तर्गत आती है। भक्ति शास्त्रमें शृङ्गार रस तथा शृङ्गाराभास दोनोंके भावोंको मधुर रस या माधुर्य भाव ही कहा है। यह आत्म-निवेदनका अन्तिम सोपान है। यही परम प्रभुसे मिलनेका अन्तिम भाव है।

जिस प्रकारकी रस - सामग्री भाव, विभाव, अनुभाव, उद्दीपन, संचारी भाव आदिके रूपमें शृङ्गार रसकी होती है, उसी प्रकारकी इसकी भी है। अन्तर केवल इतना ही है कि मधुर रसमें जो प्रेम जार या पति भावसे किया जाता है उसका आलम्बन लोक नायक नायिका न होकर रसस्वरूप, आत्माराम, योगेश्वरेश्वर, पूर्ण-पुरुषोत्तम होते हैं तथा रासेश्वरी रसस्वरूपा राधा व प्रेमकी मूर्ति-गोपियाँ हैं, जिनके पार्थिव शरीरकी कल्पना करना भी अपराध है। क्योंकि वह रसविग्रह हैं।

स्वनाम धन्य श्रीरूपगोस्वामीजीने अपने ग्रन्थ भक्तिरसामृतसिन्धुमें भक्तिरसके विवेचनके अन्तर्गत मधुर रसका निरूपण किया है। उसीकी छाया पर मधुर रसका स्वरूप प्रकट किया जा रहा है—

परम अनुरागमयी रति— स्थायीभाव है

पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, उनकी प्रियाएँ और भक्त } आलम्बन विभाव हैं

मुरलीका स्वर, सखियों और प्रियाओंकी चेष्टाएँ } अनुभाव है

व्रजभूमि, कलिन्द नन्दिनी यमुना, चन्द्र-चाँदनी,–व्रजकी लताएँ, पक्षी } उद्दीपन विभाव हैं

निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम मद, जड़ता और वैवर्ण्य आदि } संचारीभाव हैं

मधुर रसके भी दो पक्ष हैं–संयोग (संयोग) और दूसरा वियोग (–विप्रलम्भ)। पूर्वराग, मान, प्रवास, प्रेम वैचित्य, का भी इसमें समावेश है। विप्रलम्भ में वहाँ की दश दशाएँ कुछ परिवर्तनोंके साथ यहाँ ग्रहीत हैं।

लालसोद्वेगजागर्यास्तानवं जडिमात्र तु।
वैयग्र्यं व्याधिरुन्मादो मोहो मृत्युर्दशा दश ॥
(उज्वलनीलमणि)

लालसा, उद्वेग, जागरण, कृशता, व्यग्रता, जड़ता, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु- ये दश दशाएँ विप्रलंभ (विरह) रसमें होती है।

भक्तिरसके आचार्योंने इस रसका वर्णन अधिक विस्तारसे किया है। उसके वर्णनके लिये समय, प्रतिभा, स्थल अपेक्षित है। यहाँ तो श्रीमद्भागवतके मधुर रसका ही रसास्वादन करना है। श्रीमद्भागवतमें संयोग, वियोग, दोनों पक्षोंका भेदोपभेदोंके साथ निरूपण हुआ है। श्रीकृष्णकी प्रेमिकाएँ स्वकीया और परकीया दोनों रूपमें हैं। इस रसका विकास प्रधानतः व्रजमें हुआ है; इसके अतिरिक्त द्वारिका मथुरा में भी।

श्रीमद्भागवतमें प्राणेश्वरी अभिन्न हृदया राधा का नामोल्लेख नहीं है। केवल रास पञ्चाध्यायीमें एक गोपीका निरूपण है—जिसे श्रीकृष्ण रासमण्डल

से एकान्तमें ले गये थे । अनेक विद्वान् भागवतके इस श्लोकमें राधाका दर्शन करते हैं ।

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥
(भा. १०।३०।२८)

अवश्य ही सर्वशक्तिमान् भगवान श्रीकृष्णकी यह 'आराधिका' होगी । इसलिये इसपर प्रसन्न होकर हमारे प्राणप्यारे श्यामसुन्दरने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्तमें ले गये हैं—इस प्रकार एक गोपी दूसरी गोपीसे कहती है ।

राधा नामको श्रीमद्भागवतमें तिरोहित करने का एक और भी कारण है । परमहंस शुकमुनि श्रीमती राधाके स्वरूप, चरित्र और नाम पर अत्यधिक भावमग्न हो जाते थे और वह भी अनेक दिनों के लिये । श्रीमती राधा उनकी परमाराध्य गुरु भी थीं। अतः वेदव्यासने सोचा कि प्रत्यक्ष रूपसे श्रीमती राधाका नाम रखनेसे शुक मुनि श्रीमद्भागवतका पारायण न कर सकेंगे और न परीक्षित्की मुक्ति ही होगी । अतः राधा नामको तिरोहित कर दिया ।

श्रीराधा नाममात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत् ।
नोच्चारितं मतस्पष्टं परीक्षिन्हितकृन्मुनिः ॥

श्रीमती राधाके नाम मात्रसे शुकको छः मासकी मूर्छा हो जायगी अतः वेदव्यासने स्पष्टरूपसे परीक्षित् राजाका हित करनेके लिये श्रीमती राधाका नाम नहीं रक्खा ।

भागवतमें जिन गोपियोंके दर्शन करते हैं तथा जिनका गुण-गान करेंगे, वे लौकिक स्त्रियाँ नहीं हैं। उनमेंसे अधिकांश नित्य सिद्धा हैं। कुछ साधन सिद्धा भी हैं । इनमें अनेक श्रुतियाँ, देव कन्याएँ, ऋषि कन्याएँ, देवाङ्गनाएँ हैं तथा स्वयं ब्रह्म विद्या और अनेक देव हैं जो भगवानके रासोत्सवमें सम्मिलित होने तथा पुरुषोत्तमकी सेवाके लिये गोपीरूपको लेकर अवतरित हुए हैं । इन सभीको हम दो रूपमें देखते हैं—एक कुमारिकाओंके रूपमें जो प्रारम्भसे ही श्रीकृष्णकी रूप-माधुरी और चरित्र पर मुग्ध होकर उन्हें पतिरूपमें मान चुकी हैं, और दूसरी वे हैं, जो विवाहिता होने पर भी परात्पर प्रभुको परकीयाभावसे भजती हैं । गोपियोंके अवतारका यह एक प्रमाण है ।

गोरूपा पृथ्वीके भाराक्रान्त होने पर तथा देवताओं की करुण पुकार सुनकर क्षीर समुद्रके तटपर भगवान की स्तुति करते-करते जब लोकपितामह ब्रह्मा समाधिस्थ हो गये, तब उन्होंने समाधि अवस्थामें भगवानका आदेश सुनकर समाधिसे जाग्रत हो देवताओंसे कहा कि भगवान श्रीकृष्ण शीघ्र ही अवतरित हो रहे हैं। आप लोग तथा देवाङ्गनाएँ भगवानके आदेशानुसार व्रजमें गोप गोपियोंके रूपमें अवतरित हों ।

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः ।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥
(भा. १०।१।२३)

अर्थात् वसुदेवके गृहमें साक्षात् भगवान् पूर्ण-पुरुषोत्तम अवतार लेंगे । उनकी और उनकी प्रियतमाकी सेवाके लिये देवताओंकी स्त्रियाँ जन्म ग्रहण करें । उसी समय उन्होंने यह भी कहा था कि ऋषि पशुरूपमें उत्पन्न हों और प्रभुको दुग्ध प्रदान कर संतुष्ट करें ।

यही नहीं, भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तमके व्रजमें पधारनेकी दिव्यवाणीको सुनकर ऋषि, मुनि, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व और किन्नर-सभी पशु-पक्षी वन-लता का रूप धारण कर व्रजमें प्रकट हुए थे। व्रजमें रासेश्वरी और रास रसिकके साथ गोलोक वृन्दावन उतर आया। गोपियाँ तो रासेश्वरीकी परिचारिकाएँ थीं, कृष्णमें अनुरक्त थीं, अतः उनका गुणगान जहाँ तहाँ गाया गया है। भागवत गोपियोंके प्रेमका छलकता हुआ समुद्र है। गोपियोंका दैनिक कार्य-क्रम भी कुछ ऐसा था कि दूसरी सांसारिक वस्तुओं के लिये उनके पास स्थान नहीं था। वे गोविन्दमें पूर्ण अनुरक्ता थीं। इसीसे लिखा है कि—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो-
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

(भा. १०।४४।१५)

कंसकी रङ्गभूमिमें उपस्थित नगरकी एक महिला कृष्णको देखकर अपनी एक सखीसे कह रही है—'अहो, व्रजाङ्गनाएँ धन्य हैं, क्योंकि जो गायोंको दुहते समय, चावल कूटते समय, छाछ मथते और आंगनोंके लीपनेके समय, झूले पर झूलते तथा जल सींचते समय, बालकोंके रोनेके समय, गृह मार्जनादि के समय अनुरक्त चित्त हो भगवान्के चरित्रोंका गान करती हैं; उस समय उनका चित्त भगवानमें ही लग जाता है, कण्ठमें आँसू भर आते हैं।'

जिस समय श्रीकृष्णके भेजने पर उद्धव गोपियों तथा नन्द आदिसे मिलनेके लिये व्रजमें आये थे, उन्होंने भी सभीके साथ गोपियोंके दर्शन कर यह भावना व्यक्त की थी और भावमग्न हो गये थे—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

(भा. १०।४७।६३)

नन्दरायजीके व्रजकी स्त्रियोंकी पादरजको मैं बारबार वन्दना करता हूँ, जिनका भगवत् कथा सम्बन्धी गान तीनों लोकोंको पवित्र करता है।

इससे गोपियोंका—व्रजकी स्त्रियोंका माहात्म्य वर्णन करना अति कठिन है। वे मधुररसकी अधि-ष्ठात्री हैं।

गोपियोंके सर्व प्रथम दर्शन हमें भागवतके दशम स्कन्धमें नन्दके आंगनमें होते हैं, जब श्रीकृष्णका जन्म हुआ है—

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-
श्चित्राम्बराः पथिशिखाच्युतमाल्यवर्षाः।
नन्दालयं सबलया व्रजतीर्विरेजु-
र्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥

(भा. १०।५।११)

उज्ज्वल मणियोंके जड़ाऊ कुण्डल पहिने, पदक (चौकी) का हार गलेमें धारण किये, हाथमें कंकन पहने, विचित्र वस्त्रोंसे सुसज्जित हो गोपियाँ नन्दालय में पधार रही हैं। उनकी शिखाओंसे मार्गमें फूलोंकी वृष्टि हो रही है, स्तन डोल रहे हैं, कुण्डल झलक रहे हैं, हार हिल रहे हैं। अपना अपूर्व शृङ्गार कर आज नन्दलाडिलेको निरखने आई हैं। युगों-युगोंसे तृषित नेत्रोंको तृप्त करने आई हैं। आशीर्वाद देती उत्साह भरी गाती हैं—

ताः आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुञ्जगुः ॥
(भा. १०।५।१२)

'यह चिरजीवी हो'—इस प्रकार आशीर्वाद देती हुई हलदीका चूर्ण तथा तेल और पानीसे लोगोंको भिगोती हुई आनन्द विभोर होकर गीत गा रही हैं। क्योंकि आज उनकी साधना पूर्ण हुई है। उन्होंने हृदय-रमणको यहींसे अपना आराध्य चुन लिया है, उनको दूसरे काम अब अच्छे नहीं लगते; किसी-न-किसी बहानेमें नन्द-भवन पहुँचना उनका दैनिक कृत्य बन गया है। धीरे-धीरे नन्द-राजकुमार बड़े होने लगे हैं। वह अब घरमें नहीं रहते, किसी बहाने घरसे निकल जाते हैं।

गोप मण्डलीको साथमें ले लेते हैं और पहुँच जाते हैं किसी व्रजरमणीके यहाँ। उसका दूध-दही खूब खाते हैं, बाकी बचा बन्दरोंको एवं अन्य जीवोंको डाल देते हैं या लुढ़का देते हैं। यह स्मरण रहे, नन्दनन्दन किसीके यहाँ भी हृदयकी गाढ़ानुरक्ति बिना नहीं जाते। गोपियाँ उन्हींके लिये कोरे-कोरे पात्रोंमें दूध-दही रखती थीं और आपसमें अपनी सखियोंसे चर्चा करती थीं कि अरी सखि! व्रज-लाड़िले मेरे यहाँ कब पधारेंगे, मैं उन्हें कब माखन खाते हुए देखूँगी? वे यशोदा माँके पास उलाहने देने भी इसीलिये आती थीं कि कृष्णके मुखारविन्द के दर्शन करेंगी, उनके चतुरताभरे शब्दोंको सुनेंगी। एक समयका प्रसङ्ग है। झुण्ड बाँधकर गोपियाँ नन्दरानीके यहाँ उलाहने देनेके बहाने आईं और कहने लगीं—

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥
हस्ताप्राप्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैः
छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनःशिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वांगमर्थप्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥
एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तो
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ।
इत्थं स्त्रीभिः समयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
र्व्याख्यतार्थो प्रहसितमुखो नह्युपालब्धुमैच्छत् ॥
(भा. १०।८।२९॥३१)

हे नन्दरानी, हमारा चित्त जब घरके कामकाजमें लगा होता है, तब तेरा पुत्र किसी समय दोहनका समय न होने पर भी हमारे बछड़ोंको छोड़ देता है। जो हम उपालंभ देती हैं, तो हँस देता है। चोरीके उपाय करके मीठे-मीठे पदार्थ दही दूध चुरा कर खा जाता है। इतना ही नहीं, स्वयंके खानेसे जो बचता है, वह वानरोंको बांट देता है, जो वे न खाँय, तो बासन फोड़ डालता है। किसी समय कुछ भी खानेको न मिले, तो हम पर क्रोध कर हमारे पालने में सोते हुए बालकोंको रुला कर भाग जाता है। जो हाथ न पहुँचे, तो पाटा, ऊखल आदि पर चढ़कर चोरीकी तदबीर लगाता है। बासन छीकोंमें ऊँचे रक्खे हों, तो उनमें रक्खी हुई वस्तु पहिचानके लिये उनमें डण्डेसे छेद कर देता है। छेद करनेकी रचना में बड़ा ही चतुर है। यदि हम अंधियारे घरमें धरें, तो अपने अंगकी मणियोंका प्रकाश कर देता है। कभी हम चोर-चोर कहकर चिल्लायें, तो कहता है कि तुम ही चोर हो, मैं तो घरका स्वामी हूँ।

लीपे-पोते घरोंमें मूत जाता है, टट्टी कर जाता है। इस समय देखो तुम्हारे सामने कैसा भोला-भाला सा खड़ा है। इस प्रकार गोपियोंने उलाहना दीं। उस समय भययुक्त नेत्रवाले श्रीमुखकी शोभा देखने के लिये गोपियोंने सब बातें कहीं, तब यशोदा हँस पड़ीं; परन्तु पुत्रको धमकानेकी इच्छा नहीं हुई। गोपियाँ भी अपने-अपने घरको लौट गईं।

श्रीकृष्णलीलाका क्रम बढ़ रहा है। वह अपने भाई बलदाऊ और गोप-मण्डलीके साथ वनमें बछड़ों को चराने जाने लगे हैं। वहाँ जाकर भिन्न-भिन्न प्रकारकी लीलायँ करते हैं और साँझके समय व्रज लौटते हैं। गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनोंकी इच्छा से झुण्ड-के-झुण्ड बाँधकर इकट्ठी हो जाती हैं और भगवान् का दर्शन करती हैं—

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह-
वन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम्।
वेणुं क्वणंतमनुगैरनुगीतकीर्ति
गोप्यो विदृक्षितदृशोभ्यगमन् समेताः॥
पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृंगै-
स्तापंजहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि।
तत्तत्कृतिं तदभिगम्य विवेश गोष्ठं
सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम्॥
(भा. १०।१५।४२-४३)

श्रीकृष्णके दर्शनोंकी इच्छासे इकट्ठी होकर गोपियाँ श्रीकृष्णके सामने आयीं। वे भगवान् श्रीकृष्ण कैसे हैं, जिनके केशोंमें गौओंके खुरोंकी रज लग रही है, शीश पर मोरपिच्छ सुशोभित है, वक्षस्थल पर वनमाला धारण किये हुए हैं, सुन्दर नेत्र और हास्य है। अधरों पर रखकर मुरली बजा रहे हैं, सखा पीछे-पीछे गीत गाते हुए आ रहे हैं।

भगवानके मुख सौन्दर्यरूप मधुका नेत्ररूप भौंरोंसे पान कर व्रजकी स्त्रियोंने दिनके विरहतापको दूर किया। गोपियोंने लज्जा सहित हास विनय-युक्त कटाक्षसे जो सत्कार किया, उसे अङ्गीकार कर श्रीकृष्ण व्रजमें पधारे।

कालिन्दीके जलको कालीय नागने अपने विषसे अपेय बना दिया है। सभी व्रजवासी दुःखी हैं। गौ उनका जल भूलसे पी लेती है तो उसकी मृत्यु हो जाती है। श्रीकृष्णने कालिन्दीको निर्विष करनेका एक दिन विचार कर लिया और वे कूद पड़े कालीय दहमें। श्रीकृष्णको कालीयदहमें कूदा देखकर सभी दुःखी हो गये। उस समय गोपियोंकी कैसी दशा हुई, देखिये —

गोप्योनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते
तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः।
ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः
शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम्॥
(भा. १०।१६।२०)

जिनका मन अनन्त भगवानमें अनुरक्त है, ऐसी गोपियाँ भगवान्का स्नेह, मन्दहास्य, कटाक्ष और वचनोंका स्मरण करती हुई प्रियतमको सर्प-ग्रस्त देख दुःखसे अतितप्त हो अपने प्यारेके बिना त्रिलोकी को शून्य देखने लगीं।

जब भगवान् श्रीकृष्ण सर्पराजके साथ मणियोंसे विभूषित होकर बाहर पधारे, तभी गोपियोंके प्राणोंमें प्राण आये।

—बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

परलोकमें शास्त्रीजी

जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। यह सात्वत सत्य सिद्धान्त है। फिर भी नाना-प्रकारके संकटों और विभिन्न प्रकारकी विकट समस्याओंसे घिरे हुए भारतके लिये एक योग्य और कुशल नेता श्रीलालबहादुर शास्त्रीका निधन वास्तविकमें शोकपूर्ण है। अभावों और विभिन्न अफुरन्त एवं नित्य नये रूपोंमें, उदित अगणित समस्याओंके मूर्तिमान स्वरूप—इस जगतमें सदा अभाव रहा है, समस्याएँ रही हैं और भविष्यमें भी रहेंगी—वेद-पुराण और इतिहास इसके साक्षी हैं। तब बीच-बीचमें भगवान स्वयं अविर्भूत होकर, कभी-कभी अपने पार्षदोंको आविर्भूत करा कर और कभी-कभी योग्य जीवोंमें उपयुक्त शक्तिका संचार कर उन सामयिक अभावों और विकट तथा जगत्-विनाशकारी समस्याओंका कभी पूर्णरूपसे और कभी आंशिकरूपसे समाधान करते-कराते हैं। श्रीलाल बहादुर शास्त्री एक ईमानदार और भले व्यक्ति, योग्य जन नेता, कुशल प्रशासक और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे।

श्रीनेहरुके निधनके पश्चात् देश-विदेशोंमें उनके उत्तराधिकारीके विषयमें बड़ी चिन्ता हो उठी थी। उस समय देश विभिन्न प्रकारकी विकट-विकट समस्याओंके विनाशकारी भँवरमें डूब-उतरा रहा था। शास्त्रीजीने उस विकट परिस्थितिमें देशका कर्णधार बनकर उसका पतवार पकड़ कर उसे सही दिशामें लानेका प्रशंसनीय प्रयत्न किया। उन्हें इस दिशामें सफलताएँ मिल रही थीं। सारे देशकी ही नहीं, सारे विश्वकी आँखें इस योग्य पुरुषकी ओर लग गयी थीं। परन्तु भगवानकी इच्छा ही बलवान है। लाल-बहादुरजी असमयमें ही चले गये। परन्तु उन्होंने अपने प्रधान-मन्त्री-पदके अति अल्पकालमें ही अपने कार्योंसे अपनेको सर्वथा योग्य सिद्ध कर दिया। देश-विदेशमें सर्वत्र ही उनकी सराहना होने लग गयी थी। हम सर्वनियन्ता परमेश्वरसे दिवङ्गत आत्माको शान्ति प्रदानके लिये प्रार्थना करते हैं।

हम पहले ही कह आये हैं कि संसारमें सर्वदा ही अभाव और समस्याएँ रही हैं, और रहेंगी। गम्भीररूपसे विचार करने पर इन सारी समस्याओंका मूल कारण भगवत् विमुखता है। इस भगवत्-विमुखताके कारण ही जीव इस संसारमें ८४ लाखकी योनियोंमें भौतिक शरीर धारण कर विभिन्न रूपोंमें त्रितापों द्वारा दग्ध किये जा रहे हैं। अतएव जब तक इस मूल कारणको सुलझानेका प्रयत्न नहीं होगा, तब तक सामयिक रूपसे कुछ समस्याओंका समाधान होनेपर भी उनसे भी अधिक करोड़ों समस्याएँ मुख बाये खड़ी दिखलायी पड़ेंगी। उन्हें समग्र जगतके सारे भगवत्-विमुख देशाध्यक्ष और जननेता करोड़ों जीवनोंमें भी सुलझा नहीं सकते। भगवद्-उन्मुखता और भगवद्-विमुखता पर ही जीवकी शान्ति-अशान्ति, सुख-दुःख और मुक्ति या संसार बन्धन निर्भर है।

फूलहिं नभ बरु बहुविधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥
हिम ते अनल प्रकट बरु होई। बिनु हरि भजन न जाव न कोई॥

बारि मथें बरु होई घृत, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

—संपादक

छप रहा है ! छप रहा है !!

जैवधर्म

हमें यह सूचित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि वर्तमान वैष्णव जगतमें विशुद्ध भक्ति-भागीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भक्ति सम्बन्धित सैकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता, श्रीचैतन्य महाप्रभुके पार्षद सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें लिखित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'जैवधर्म' (जीवका धर्म) का हिन्दी-संस्करण छप रहा है और शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है ।

'जैवधर्म' कहनेसे जीव-सम्बन्धी धर्म या जीवके धर्मका बोध होता है । बाह्यदृष्टिसे विभिन्न देशोंकी विभिन्न जातियों एवं विभिन्न वर्गोंके मनुष्यों, पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों तथा दूसरे दूसरे विभिन्न प्राणियोंके धर्म भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होनेपर भी अखिल ब्रह्माण्डोंके निखिल जीवसमूहका नित्य और सनातन-धर्म एक है । जैवधर्म-ग्रन्थमें इसी सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य-धर्म—'जैवधर्म' का हृदयग्राही साङ्गोपाङ्ग वर्णन है । इसमें वेद, वेदान्त, उपनिषद, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, इतिहास, पंचरात्र, षट्सन्दर्भ, श्रीचैतन्यचरितामृत, भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि आदि सद्ग्रन्थोंके अतिशय गंभीर और गहन विषयोंका सार सरस सरल और उपन्यास-प्रणालीमें सागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है ।

इस ग्रन्थमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनके रूपमें ग्रथित भगवतत्त्व, जीवतत्त्व, शक्ति-तत्त्व, जीवकी बद्ध और मुक्त दशाएँ, कर्म, ज्ञान और भक्तिका स्वरूप एवं तुलनात्मक विचार, वैधी-रागानुगा भक्तिका सिद्धान्तपूर्ण सरस विचार-वैशिष्ट्य तथा श्रीनाम-भजनकी सर्वश्रेष्ठता आदि विषयोंका अपूर्व मार्मिक विवेचन है ।

हिन्दी जगतमें अबतक वैष्णव-धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका तुलनात्मक बोध करानेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर एवं सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका अभाव था । "जैवधर्म" हिन्दी जगत्में इस अभावकी पूर्त्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगतमें, विशेषतः वैष्णव जगतमें युगान्तर उपस्थित करेगा, इसमें सन्देह नहीं ।

अतः पाठकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थरत्नका संग्रह कर अवश्य ही अध्ययन करें ।

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीश्रीव्यासपूजाका निमंत्रण-पत्र

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ,
तेघरिपाड़ा, पो०—नवद्वीप (नदिया)
१६ दिसम्बर, १९६५

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यासकुल-श्रमणसङ्घाराध्य-वेदान्तविद्याश्रितेषु—

आगामी २५ माघ, ८ फरवरी (माघी कृष्णा तृतीया) से २७ माघ, १० फरवरी ६६ ई. (माघी कृष्णा पंचमी) तक व्यासाभिन्न **जगद्गुरु ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'** (माघी कृष्णा पंचमी) एवं उनके अन्तरंग प्रिय पार्षदवर **परिव्राजकाचार्यवर्य ॐविष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज** (माघी-कृष्णा-तृतीया) की आविर्भाव-तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ा (प०बंग) में तीन दिन **श्रीश्रीव्यासपूजा और तदङ्गीभूत पूजा-पञ्चक** अर्थात् श्रीकृष्ण पञ्चक, व्यास पञ्चक, मध्वादि आचार्य पंचक, सनकादि-पंचक, श्रीगुरुपंचक और तत्त्वपंचककी पूजा और होम आदि अनुष्ठित होंगे। प्रति दिन हरिकीर्तन, भागवत-पाठ, भाषण, स्तवपाठ, श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-संशन और अञ्जलि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान और विशेष अङ्ग होंगे।

धर्म-प्राण सज्जन महोदयगण उक्त शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें बन्धु-बान्धवोंके साथ योगदान करनेसे समितिके सदस्यवर्ग परमानन्दित और उत्साहित होंगे । इस महदनुष्ठानमें योगदान करनेमें असमर्थ होने पर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने पर भी भगवत् सेवोन्मुखी सुकृति अर्जित होगी।

वैयासक्यानुगस्याभिलाषी—

सभ्यवृन्द

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्रष्टव्य—बृहस्पतिवारको श्रीपूजा-पंचकादि, श्रील आचार्यदेवके श्रीपादपद्मोंमें पुष्पांजलि, विभिन्न भाषाओंमें प्राप्त प्रबन्ध-पाठ, भाषण । शुक्रवारको श्रीगुरुतत्त्वके सम्बन्धमें प्रवचन । शनिवारको श्रील प्रभुपादके श्रीपादपद्मोंमें अञ्जलि-प्रदान, शामको प्रबन्धादि पाठ एवं श्रीमद्भागवतसे श्रीव्यासदेवके सम्बन्धमें आलोचना ।

❀ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ❀

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
तेघरिपाड़ा, पो० नवद्वीप,
(नदिया)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि की निखिल भुवन-मङ्गलमयी आविर्भाव तिथि-पूजा (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के उद्योग से उपरोक्त ठिकाने पर आगामी १८ फाल्गुन, २ मार्च बुधवार से २४ फाल्गुन, ८ मार्च, मंगलवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक विराट महोत्सव का अनुष्ठान होगा । इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, महाप्रसाद वितरण प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे ।

इस उपलक्ष्य में श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ द्वीपों का दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन करते हुए सोलह-क्रोश की परिक्रमा होगी । गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाछी एवं श्रीधाम मायापुरमें मध्याह्न भोगराग और प्रसाद सेवाके पश्चात् संध्याको श्रीनवद्वीपमें लौट आने की सुव्यवस्था की गई है ।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सबान्धव योगदान कर समिति के सदस्यवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे । इस महदनुष्ठान का गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समिति के सेवाकार्य में सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे । इति १६ दिसम्बर, १९६५

शुद्धभक्त कृपालेश-प्रार्थी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान केशव महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने पर लिखें या भेजें ।